शब्द-शब्द मन

(काव्य-संग्रह)

ज्ञानेंद्र माहेश्वरी

शब्द-शब्द मन

(काव्य-संग्रह)

डॉ० चंद्र प्रकाश आर्य जी
सप्रेम भेंट
ज्ञानेंद्र

ज्ञानेंद्र माहेश्वरी
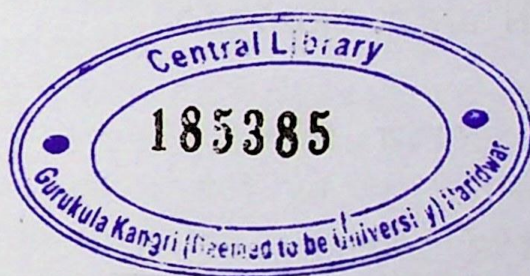
-: प्रकाशक :-
मधु प्रकाशन
साई नीहारिका, पटियाली सराय
बदायूँ - 243601 (उ.प्र.), भारत
+91-9359459695
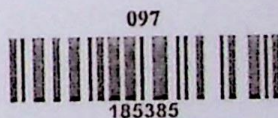
(रचना वहीं संभव है जहाँ वह है क्योंकि वही रचयिता है।)

ISBN : 978-93-81328-20-0

प्रथम संस्करण : 2019

मूल्य : ₹ 125/–

मुद्रक :

विनायक प्रेस

माहेश्वरी नगर, डिबाई (बुलंदशहर)– 203393 (उ0प्र0)

Mob.: +91-9412484001, +91-8077064931

e-mail : vinayakpress7@gmail.com
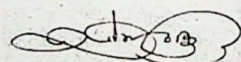
शब्द-शब्द मन : एक सार्थक संवाद

उन्नीसवीं शताब्दी के समापन के साथ ही फ्रांस के कला–जगत् में ऐसे चित्रकारों का एक गुट निर्मित हो चुका था जो पारंपरिक युक्त–युक्त चित्रण में असमर्थ था। उन कलाधरों में चित्रकार के रूप में मान्यता प्राप्त करने की उत्कट इच्छा प्रबल महत्वाकांक्षा का रूप धारण कर चुकी थी। इन लोगों को पिकासो का नेतृत्व मिला। उनकी स्थापना यह थी कि दृष्टा जब किसी वस्तु को देखता है तो नेत्र–पटल पर उसका बनने वाला चित्र स्पष्ट रेखाओं एवं अनुषंगों के स्वरूप से युक्त होता है। परिदृश्य से उस वस्तु के हटने के पश्चात् मानस–पटल पर जो अस्पष्ट चित्र बनता है वही स्थाई है। इस दृष्टिकोण ने चित्रकला के क्षेत्र में अमूर्तवाद को जन्म दिया। इसी आंदोलन के अंतर्गत घनवाद, झागवाद आदि प्रतिपादित हुए। साहित्य के क्षेत्र में भी पहले फ्रांसीसी तत्पश्चात् आंग्ल रचनाकारों ने इस प्रवृत्ति को आत्मसात् किया। इलियट तथा उनके अन्य अनुयायियों के मुहल्ले से उक्त काव्य–विन्यास को अज्ञेय ने ज्यों का त्यों आयातित करके **'नई राहों के अन्वेषी'** होने की छद्म मौलिकता के उद्घोष के सूत्रपात के साथ प्रयोग एवं अति यथार्थ के उच्छिष्ट को भारतीय आस्थाओं में विश्वास रखने वाले साधकों की उपस्थिति में हिंदी के भोक्ता समूह के सामने दुराग्रह के साथ परोस दिया। इस प्रयास के अंतर्गत ही बीसवीं शती के चौथे दशक में प्रकाशित **'तार सप्तक'** को नवता के मानक के रूप में प्रस्तुत किया गया था। सत्यता यह है कि **'तार सप्तक'** के सहचरों के मन में भी अज्ञेय की मंशा स्पष्ट नहीं थी। यही कारण है कि आगे चलकर अज्ञेय के कई साथी उनके कट्टर विरोधी हो गए। समीक्षा–शिखर डॉ0 रामविलास शर्मा उनमें से प्रमुख हैं। सत्य यह है कि **'तार सप्तक'** के रचनाकारों का समूहीकरण भक्तिकालीन महाकवि सूरदास के **'अष्टछाप'** आंदोलन का अंधानुकरण मात्र था। अंतर केवल यह था कि **'अष्टछाप'** की पृष्ठ–भूमि में अध्यात्मपरक जन–समर्थित सांस्कृतिक आस्था थी; किंतु **'तार सप्तक'** का अंतः स्वर पूँजीवादी अहेर की लक्ष्य, प्रगतिशील चेतना के प्रच्छन्न विरोध–धर्मी षड्यंत्र का जन–अस्वीकृत रचनात्मक प्रपंच। कालांतर में पूँजीवाद के छद्म समर्थक स्वयं को सामान्य–जन का पक्षधर घोषित करने लगे।

रचना–रूपों को नए नाम दिए गए – नई कविता, अकविता, समकालीन कविता, सांप्रतिक कविता आदि–आदि।

परंपरा और प्रयोग के इस प्रयोग के इस संघर्ष में एक तीसरी गुटनिरपेक्ष धारा प्रवाहित हुई जो रूप–शिल्प में नई कविता के निकट थी; किंतु संवेदनशीलता के स्तर पर मौलिक भारतीय मानस की वाहिका बनी। डॉ0 ज्ञानेंद्र माहेश्वरी उसी मौलिक पहचान बनाने वाली तरुण–पीढ़ी के एकांत–साधक–रचनाकार हैं।

'शब्द–शब्द मन' की रचनाओं में मनः स्थितिपरक संवेदन–बिंदुओं का शब्द–रूप में प्रतिबिंबन हुआ है। अधिकांश रचनाओं में ज्ञानेंद्र पाठक–से संवाद करते–से लगते हैं। प्रायः संतुलित–संयोजन संप्रेषण–क्षमता में सहायक हुआ है। निजी बिंबन और सार्थक प्रतीक–योजना ने रचनाकार–की निजी पहचान बनाने में सहायता की है। स्पष्ट अभिव्यक्ति के बीच कहीं–कहीं उलझाव रचनाकार–से और अधिक अभिव्यक्ति–कौशल एवं शिल्प–सामर्थ्य की अपेक्षा की ओर इंगित करता है। रचना–धर्मिता से जुड़े रहने पर यह अभाव धीरे– धीरे अभिव्यक्ति को पारदर्शी आयाम प्रदान करेगा। भाषा के स्तर पर किसी भी छल का प्रयोग न किया जाना रचनाओं की सहजता को रेखांकित करता है। साहित्य के अनुबंध–पत्र पर नए हस्ताक्षर के नाते संभावनाओं की अपेक्षा रखते हुए **'शब्द–शब्द मन'** का आशिष की मुद्रा में ही सही, साहित्य–मंदिर में स्वागत होना चाहिए। मेरी हार्दिक शुभकामनाएँ।

सोम ठाकुर

26/73, अहीर पाड़ा
राजा की मण्डी
आगरा – 282002
9 जनवरी, 2004

कुछ कहने को - आकुल है मन !

संवेदनशील संभावनाओं की आहट से अनुप्राणित उदीयमान रचनाकार ज्ञानेंद्र माहेश्वरी जी का काव्य—संग्रह आपके सुकोमल हाथ में है। साहित्य राष्ट्रीय चेतना का संवाहक होता है – यदि किसी देश अथवा जाति की संस्कृति की धड़कनों को समझना हो तो उसकी नब्ज साहित्य पर हाथ रखना अनिवार्य है। डॉ0 ज्ञानेंद्रजी के श्वास – प्रश्वास का इतिहास चिरकाल से मेरे साथ जुड़ा है – वे दीर्घकाल से मेरे सान्निध्य में हैं – उन्होंने बहुत सारी कविताएँ लिखी हैं। इनकी कुछ कविताएँ निश्चय ही रेखांकन योग्य हैं और चर्चित भी रही हैं तथा वे सब कविताएँ श्लाघनीय एवं रोचक हैं – जिनको सुनकर महफिल झूम जाती है। वस्तुतः वे कविताएँ नहीं आँसुओं की लड़ियाँ हैं जो कवि ने बहाए हैं। यह कविता—मंजरी उनको समर्पित होगी जो कविता को अभी भी प्राण देने; उसे स्थापित करने में साधना—रत हैं। वह न गहन अध्यात्म, न प्रकृति प्रस्तुत करते हैं – उनकी कविता वह जीवन – दर्शन है जो हम जीते हैं। नीरज ने कहीं लिखा है –

जुल्फों के पेचोरवम में उसे मत तलाशिए;
यह शायरी जुबाँ है किसी बेजुबान की।

हमें पूरा विश्वास है कि प्रस्तुत—संग्रह कवि की निजता को आँकने में समर्थ होगा। इस—संग्रह के माध्यम से प्रस्फुटित होते काव्य का चेहरा हम पहचान सकते हैं। पूर्ण तो कुछ होता ही नहीं – वृत्त के अतिरिक्त। पूर्ण – संतोष भी मृग—मरीचिका ही है। फिर भी कविता का कथ्य ज्ञानेंद्रजी ने बड़े परिश्रम से प्रेषित करने का प्रयास किया है। वह विज्ञान से मुड़कर काव्य—रचना की ओर चले हैं। **'शब्द—शब्द मन'** में अश्रु—तरंगों पर चढ़कर वह श्रोताओं के हृदय को स्पंदित करना चाहते हैं – अतुकांत कविता के माध्यम से – जिसका प्रचलन दिन—दूना रात—चौगुना बढ़ रहा है।

नितांत निजी परिस्थितियों से उत्पन्न अंतर्द्वंद और पीड़ा इन कविताओं—से व्यक्त हुई है। जीवन के कष्टों और कठिनाइयों से जूझने का यही वह आंतरिक—सूत्र है जो इन सारी कविताओं को 'तरंग' की विविधा से जोड़ता है। यह ज्ञानेंद्रजी की पहली—पहली कविताएँ हैं। इन कविताओं—से गुजरने से यह

लगता है यह स्वर कहीं उथले हैं और कहीं अपने सघन परिवेश से जुड़े होने के नाते अत्यंत सशक्त---। इनका स्वर अनुभव या दर्द के स्पर्श से परे विशिष्ट और निजी होने की दिशा में सक्रिय दिखाई पड़ता है। यह कविताएँ सघन अनुभवों और उन्हें अन्वित करने वाली विचार–दृष्टि को पाठकों या श्रोताओं तक पहुँचा देती हैं। बहुत बार समीक्षक उन्हें समीक्षा योग्य न मानें – कविता मानने से इंकार भी कर दें; पर रचनाएँ पारदर्शी हैं – इतना अवश्य संशय से परे कहा जा सकता है। इनकी संप्रेषणीयता पर कोई उँगली नहीं उठा सकता। किसी कवि ने ठीक कहा है –

कविता कर लेना साँझ – सकारे और बात है
कविता की धड़कन छू लेना और बात है
वैसे कब दुनिया कवियों से रहती खाली–
प्राणों का आसव ढलकाना और बात है।

इस आसव का रसास्वादन पाठक कर सकें सो कवि ने वह अनूठा–आसव तैयार किया है। अर्थेषणा से दूर रहकर हिंदी की अस्मिता बनाए रखने के लिए संभवतः ज्ञानेंद्रजी का व्रत–सा लगता है। हृदय से उन्हें आसीस देकर इतना मात्र कहना चाहूँगा –

नई बीन पर राग अनुपम संभाले
तुम्हारी सतत–साधना नित सफल हो।

ज्ञानेंद्रजी मुक्त–हृदय से मधुर स्वरों का सहारा लेकर, गाकर अपनी बात श्रोता तक पहुँचाने में सक्षम हैं। कभी वीरेंद्र मिश्र ने जो लिखा था वह इनके काव्य के संदर्भ में सही–सही उतरता है –

हम भी तुम तक पहुँचाते हैं मन के सरगम की मधुवंती
वीरानों में जैसे कोई छेड़े गम की जय–जयवंती
हो पीली शाम उदासी की या हो रजनी–गंधा प्यासी
तुम तक पहुँचा देते खुशबू धरती की हो या आकाशी।

ज्ञानेंद्रजी की कविता अर्थगर्भी है। कविता भीतर–से उभरती दीखती है। जीवन के तीखे अनुभव इनकी कविताओं की भंगिमाओं से ध्वनित हैं । इनकी कविता ध्वंस एवं पुनरुत्थान से परे यथार्थ के धरातल पर उगी है और जीवन का इतिहास–बोध उसकी भूमिका है; जिससे उनकी अंतर्निष्ठा का सम्यक्–ज्ञान हो जाता है। उनकी रचनाएँ परख एवं परीक्षा से गुजरती हुई

पाठक अथवा श्रोता की कल्पना को गुदगुदाती व आह्लादित करती हैं। उनके काव्य की परिभाषा में बस इतना निवेदन करूँगा –

रास रचे छवि जीवन–पथ पर
कलकंठों का लगता मेला।
मगर एक स्वर विलग कि सबसे
जिसने हठखेली से खेला।।

लगता है ज्ञानेंद्रजी अपनी जिंदगी और उससे जुड़ी स्थितियों के ग्राफ आदमी की भाषा में उतार रहे हैं – नक्श कर रहे हैं उन समूचे क्षणों को जिनमें आदमी मर–खप रहा है, जी–कर मिट रहा है और मिटते हुए भी एक आस्था, एक जिजीविषा लिए हाँफ रहा है। प्रायः ज्ञानेंद्रजी की प्रिय पंक्तियाँ जो सोम जी ने गाईं और उन्होंने पसंद कर गुनगुनाईं–

हारा–हारा होके हुआ बेसहारा आदमी ।
मौत ने न मारा जिंदगी ने मारा आदमी।।

उनके काव्य–की मीमांसा भी होंगी।

प्रस्तुत लघु किंतु प्रभावशाली चयनिका में संवेदना की सूक्ष्मता के लिए विशेष रूप से उल्लेखनीय कविताएँ हैं – गहरे पानी पैठ, तालाब, सुख–दुख, तरंग, प्रतीक्षा, आशीर्वाद और नियति। यों अन्य कविताएँ भी हृदय–से प्रवाहित उस निर्झरिणी का संकेत देती हैं जो हृत्तंत्री के तारों को झंकृत कर जाएँ। कितनी नावों में——, गहरे पानी पैठ, अभी नहीं!, शाश्वत, संबोधि, प्रतीक्षा, ब्रह्म, अस्तित्व, अबधू – जैसी कविताओं–से दार्शनिकता प्रतिबिंबित होती है – और जीवन की गहनता में गोते लगाकर कतिपय तथ्यों का अविस्मरणीय आलेख प्रस्तुत करने का सार्थक–प्रयास किया गया है। 'तालाब' में समाज का यथार्थ समसामयिक रूप प्रस्तुत किया गया है तो 'नियोग' आधुनिक समाज की विसंगति पर व्यंग्य है। 'तुम!' आपसी कसक का सूक्ष्म विवेचन प्रस्तुत करती है। 'लड़की' आधुनिक लड़कियों का चित्रांकन है तो 'सुहाग!' आधुनिक अध्यापिकाओं की स्थिति को जताती है और 'हो सके तो' अभिनव–शैली में प्यार के पैगाम को प्रसारित करने का आह्वान करती है तो 'तिरिया!' कृत्रिमता की ओर अग्रसर 'अर्वाचीन नारी' का दर्पणवत् प्रतिबिंब प्रस्तुत करती है। 'आँसू' में यदि प्रच्छन्न वियोग के भाव विद्यमाान हैं और स्मृति की मनोवैज्ञानिक स्थिति

को दर्शाया गया है तो जीवन की पीड़ा का सूक्ष्म प्रतिबिंबन 'पीड़ा' में हुआ है। 'कचोट' में जीवन की यथार्थता को कल्पना के फ्रेम में जड़ा है तो 'सुख–दुख' विशुद्ध मनोवैज्ञानिक स्तर पर लिखी गई लघु रचना है। यदि 'प्रोफेसर' में वैज्ञानिक अभिव्यंजना मुखर हुई है तो 'अध्यापक' तथा 'विद्यार्थी' – आधुनिक परिप्रेक्ष्य में उनकी यथार्थ स्थिति प्रदर्शित करती हैं।

'आशीर्वाद' में भ्रष्ट अधिकारियों पर चोट की गई है तो 'योग्यता' आधुनिक चापलूसों पर समीचीन कटाक्ष है। यदि 'मित्रता बड़ा अनमोल रतन' आधुनिक मित्रों की अवसरवादिता की ओर इंगित करती है तो 'विषखपरिया' आधुनिक – मानव की परिभाषा परिलक्षित करती है। 'सपेरे' और 'पीर' पृथक–पृथक मानवीय पहलुओं का चित्र उपस्थित कर क्षणिकाओं की संवेदनशीलता का परिचय देती हैं। 'काँव!काँव!!.....' चालाक व्यक्ति की पहचान का बैरोमीटर है तथा 'मुखौटा' आज के पाखंडी व्यक्ति को रेखांकित करता है तो 'पिता' आधुनिक पिताओं की उपेक्षा–वृत्ति पर करारा व्यंग्य है। 'डॉक्टर' कविता सजीव व्यंग्य है। 'तरंग' इस काव्य – संग्रह की आत्मा है और उसकी संरचना का सबल आधार भी। 'प्रतीक्षा' में मन के भावों की सहज व्याख्या की गई है। 'अस्तित्व' आधुनिक परिप्रेक्ष्य में 'ईस्वर अंस जीव अबिनासी' अथवा गीता के 'ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः' का भावानुवाद–सा प्रतीत होती है तो 'आपुहि आपु महँ' में पुनः गीता के दर्शन का शाश्वत–संदेश निहित है। कहा गया है – 'है अंश सनातन मेरा ही जो जीव देह में है रहता'। 'कामना' सांसारिकता से हटकर परमेश्वर की ओर उन्मुख होने तथा अस्तित्व में लीन होने की हार्दिक तड़प है तो 'अबधू' परम विराट् में लीन होने की लघु कथा और 'ब्रह्म' – 'न तस्य प्रतिमा अस्ति' को दूसरे शब्दों में दुहराने की सराहनीय चेष्टा। नियति, सुख–दुख, परिवर्तन तथा अनाम तुम! में जीवन–दर्शन अंकित किया गया है।

कतिपय स्मरण पंक्तियाँ यहाँ–वहाँ से संग्रहीत हैं – जो बार–बार मस्तिष्क–पटल पर उभर–उभर आतीं हैं और उन्हें हम दुहराने को बाध्य होते हैं –

बीबी पड़ौसी की
कहलाती है –
पड़ौसिन
क्योंकि
उसमें होता है 'सिन'।

एक मछली
गंदा करती है
सारा तालाब
तो मछली का
क्या है कसूर ?
जब गंदा ही है –
सारा तालाब।

आचरण से
गिरे हैं
बातों में नहीं
आ–(चरण) में
गिरे हैं।

उनके आने की
प्रतीक्षा करता हूँ
नहीं आते हैं
तो, 'न आने की'
प्रतीक्षा करता हूँ।
(यह कविता परम विराट् की चिर–प्रतीक्षा की झलक देती है।)

धूर्त्तता का
लगाने से पुट
बनता है गुट।

विद्यार्थी का चित्र –
विद्यार्थी
जो – निकाल दे
विद्या की अर्थी।

भ्रष्टता और पाखंड को उजागर करते हुए कवि कहता है –

भ्रष्टता
इस सीमा तक
बढ़ गई है
उद्घाटन कर
आशीर्वाद भी
देने लगी है।

मानवीय अधिकारों की दुहाई देने वाले किस प्रकार सच कहने पर भी प्रतिबंध लगाते हैं – कविता 'आपात्–रस्म' से प्रगट होता है –

आवाज को
दबाया जा रहा है
अनुशासन – पर्व !
मनाया जा रहा है।

कविता 'ऐनक' गूढ़ अर्थ देती है –

दृष्टि क्षीण के
नयन–समर्थक
हो गए तुम!
पथ – प्रदर्शक।

लड़कियों पर व्यंग्य करते हुए कवि कहता है –

लड़कियाँ .... !
कुछ क्षणों को
लड़का हो जाती हैं
सीटियाँ बजाती हैं।

कविता 'मुखौटा' आदमी की सजीव व्याख्या है। 'सुहाग!' महिलाओं की बेवशी का चित्रण है, जिन्हें बरबस नौकरी करनी पड़ी है –

रोज पढ़ाने जा रही हूँ
सच बताऊँ!
'सुहाग' खरीदने के लिए
पैसे जुटा रही हूँ।

शत्रुता का – 'इत्र'
फुरेर
सजे बैठे हैं – मित्र
यह कैसा ?
संयोग विचित्र।

'अंतर्–यात्रा' जीवन के गहन–रहस्य की कोर छूती है –

चलता हूँ
चलकर भी
चल नहीं पाता
मंजिल, पहुँच नहीं पाता
'दिल्ली बहुत दूर है'।

दार्शनिकता देखें –

प्रकाश का होना
अंधकार का खोना है
अंधकार कुछ भी नहीं।

व्यक्तित्व और अस्तित्व का
अभिव्यक्त होना ही –
व्यक्ति का व्यक्ति होना है।

परम – सत्ता के अस्तित्व को स्पष्ट करती हैं ये पंक्तियाँ –

फूलों का खिलना/पत्तों का झरना;
हवा का चलना/दिल का धड़कना;
सूरज का निकलना/चाँदनी का बरसना;
सभी उसी अस्तित्व का
संदेसा लेकर आते हैं।

कविता 'विडंबना' इस छलना–युग के व्यक्ति की परिभाषा को रेखांकित करती है।

भावनाएँ – मौन
कामनाएँ – मौन
कहे कौन ??
साधनाएँ – मौन ।

आदमी/घनेरे हैं
अनावृत/सपेरे हैं।

मर जाता है – कोई!
पाता है ––– 'अमृत'?
जो मरता है – सोई।

भारतीय संस्कृति की अक्षुण्ण – परंपरा की पुनीत – सलिला जिसमें प्रायः मनीषियों ने अवगाहन किया है, के संगीतमय कलकल–निनाद को इस कविता में प्रतिध्वनित किया है –

तुझमें
'मैं' –
मुझमें
'तू'।

वस्तुतः लिखना कुछ और था और अब लिख गया कुछ और है। ज्ञानेंद्रजी का स्मरण हर साँस के साथ इधर कई वर्षों से चल रहा है – जिन्होंने निरंतर आग्रह और स्नेह से हृत्तंत्री के तारों का संस्पर्श कर आकुलता को वाणी देने के लिए उत्प्रेरित किया। उनकी आत्मीयता और त्वरा मेरी इस लिखावट का कारण बनी है। उनके स्नेह के लिए आभार तथा 'शब्द–शब्द मन' के ख्याति–विस्तार के लिए अगणित आसीस –––

जो कथन पिरोए गए यहाँ निज–निज मन की वह भाषा है
जिसको जैसा भी रुचा–लिखा अपनी–अपनी परिभाषा है
'शब्द–शब्द मन' को पढ़कर पाठक–गण बिंब बनाएँगे–
दर्पणवत् छवि मन में उतरे ऐसी मेरी अभिलाषा है।

शुभ काम

विनय कुमार सिंह

डॉ० विनय कुमार सिंह
सेवा–निवृत्त
प्रवाचक एवं अध्यक्ष (अंग्रेजी–विभाग)
डिगंबर पोस्ट–ग्रेजुएट कॉलिज
डिबाई – 203393

'साई नीहारिका'
पटियाली सराय
बदायूँ–243601
(उ० प्र०)
22 जनवरी, 2004

ये अपने महके शब्द - सुमन

कितनी बार, कितनी नावों में; हुए हैं सवार – उतर जाने को...... नदिया के पार...... उस पार, पर; इस पार, इस बार – जन्मों – जन्मों से आवागमन के संत्रास की नियति – की विडंबना में भाग्य के भरोसे बैठकर – अभी नहीं! की टालमटोल कचोट से अंतर्–यात्रा में गहरे पानी पैठ कर अंतः करण में उठी वियोग के तरंग की पीर लिए सुख – दुख की आँसू भरी पीड़ा में – प्रायश्चित करता हुआ...... परिवार की काँव!काँव!!...... में फँसा यायावर चल हंसा की टीस लिए – तुम!से, अनाम तुम! से; हो सके तो – हाँ! हाँ!! ––– शाश्वत से जो सहज न चीन्हैं कोइ है – उसी अनुपमेय से – अपरिमेय से – अप्रमेय से – परम पिता से; परिचय पाने की कामना लिए – इस जीवन में उद्‌बुद्ध होने की अभीप्सा में मौन रहकर अबधू होकर (अमृत पीकर) – निर्गुण–ब्रह्म के अस्तित्व के प्रकाश की प्रतीक्षा करते–करते पड़ौसिन के पंछी की आँखें संबोधि की झलक पाकर थक गई हैं और अब खोजनहार हैरान है, वह आपुहि आपु महँ – विलय होना चाहता है और नदिया के पार अब की बार उतरना चाहता है पर लिखते–लिखते शब्द (सब) चुक जाते हैं; कह नहीं पाते हैं – थक जाते हैं, सह नहीं पाते हैं; सह जाते हैं – सहते–सहते सहने की भी सीमा होती है – 'सहते ही बनै, कहते न बनै'। सहन की भी एक पीड़ा होती है। सहन की पीड़ा भी सघन होती है। सीमा लँघती है – पीड़ा बढ़ती है। पीड़ा में भी टीस होती है। टीस उठती है। टीस की भी वेदना है। वेदना में पीर है। पीर की छटपटाहट है। छटपटाहट से बेचैनी है। क्या कहूँ––– कुछ कहा न जाय। मन की गगरी छलकत जाय––– शब्द – शब्द मन झलकत जाय। छटपटाहट की ही बेचैनी है। बेचैन तड़पन है। तड़पन आकुल है। आकुल आहें हैं। आहें;कराहें हैं। कराहें व्याकुल हैं। व्याकुल संवेदना है। संवेदना की अपनी भूमि है। भूमि–भी उपजाऊ है। कष्टों का मौसम है। अनुभूति की खाद है। सहनशीलता के बीज समय के जल से अंकुरित होने लगे। अंकुर अज्ञेय के प्रकाश में पल्लवित होकर लहलहाने लगे। हवा में झूमने लगे। प्राण पड़ने लगे। हृदय धड़कने लगे। भाव उमड़ने लगे। अभिव्यक्त होने के लिए मचलने लगे। भावना की डाल पर शब्द–सुमन खिलने लगे। प्रकृति के अनुरुप – मन के उपवन में–'कुसुम' – काव्य–रूप में महकने लगे। चुभन–कसक–टूटन–

थकान–उदासी–कुंठा–घुटन की गंध बिखेरने लगे। स्वभाव–के पराग–कण उड़ने लगे। अकेलेपन की छटपटाहट के भौंरे गूँजने लगे – आँसुओं के मकरंद का पान करने लगे।

शब्द टप–टप टपकते हैं। टपकते ही जाते हैं। आँसू बन जाते हैं – शब्द। आँखें बन जाती हैं – वाणी। और तब ---- शब्द देते हैं – वाणी; मन की पीड़ा – आत्म–दर्द को!

शब्द टप–टप टपकने लगे। आँसू की धारा में बहने लगे। आँसू अक्षर बनने लगे। पीड़ा की भाषा गढ़ने लगे। आँसुओं के नग जड़ने लगे। आँसुओं के सामने – आँसू कथा कहने लगे। पर, आँसू की भाषा का – अर्थ समझना; सरल नहीं। क्योंकि, आँसू गिरते हैं; गिरते चले जाते हैं। थमते नहीं; थमने का नाम भी नहीं लेते। आँसुओं की कहानी; कहानी बनकर रह गई। कही, पर अनकही रह गई। किंतु, आँसुओं में बह गई ---- बहते–बहते कह गई –

दुख ही जीवन की कथा रही
क्या कहूँ आज जो नहीं कही।

आँसू गूँगे हैं। पीड़ा के मूँगे हैं। आँसू–आँसू बहूँ – तो कहूँ। आखर–आखर सहूँ–तो कहूँ। पर, क्या कहूँ ? क्या न कहूँ ? कहा नहीं जाता। सहा नहीं जाता। कहे बिन रहा नहीं जाता। पर लिखते–लिखते शब्द भी चुक जाते हैं; कह नहीं पाते हैं – थक जाते हैं, सह नहीं पाते हैं; सह जाते हैं – सहते–सहते सहने की भी सीमा होती है – 'सहते ही बनै, कहते न बनै'।

मन का अपना अलग उपवन है। एक सघन नंदन – वन है। जन्म – जन्मांतर से कचोट की कोयल इस उपवन में कुहुक रही है। उन्मन का खुला आकाश है। गगन–मंडल घर कीजै। तो बंक–नाल रस पीजै। मेरा मन मतिवारा है। त्रिभुवन में उजियारा है। जा ही में अनहद बाजै। जा ही में सिरजन हारा ----

आपुहि कागद आपु मसि आपुहि लेखन हारा।

हर शब्द तेरा। न कुछ मेरा। सब–कुछ तेरा। मेरा मुझमें कुछ नहीं। तन भी तेरा। मन भी तेरा। 'शब्द–शब्द मन' भी तेरा। तेरा तुझको अर्पण।

बहुत ही कृतज्ञ हूँ – अपने गुरूजी! परम आदरणीय – आत्यंतिक

डॉ0 विनय कुमार सिंह, सेवा–निवृत्त प्रवाचक एवं अध्यक्ष (अंग्रेजी–विभाग) – डिगंबर पोस्ट–ग्रेजुएट कॉलिज, डिबाई – की अनुक्षण असीम अनुकंपा का – जिन्होंने इस उपवन की बंजर–भूमि को अपने आसीस के अनवरत शक्ति–निपात से उर्वरा किया और लहलहाते उद्यान को अपना आशीर्वाद प्रदान कर धन्य किया।

और मैं आभारी हूँ – अस्तित्व की झलक की ओजस्वी आभा के मनमोहक सुदर्शन–व्यक्तित्व की अनूठी–छवि के धनी – काव्य के अवतार, भाषा के श्रृंगार; एक ॠचा पाटल को, के रचनाकार – वरेण्य कवि श्री सोम ठाकुर का, जिन्होंने अपनी स्नेह–शैली से अनुग्रह प्रदान कर कृतार्थ किया।

टंकण–मुद्रण से पृष्ठ–पृष्ठ पर सजीं–धजीं सँवरी निखरीं 'शब्द–शब्द मन' बिखरीं समस्त रचनाएँ उन्नीस सौ उन्यासी से उन्नीस सौ निन्यानबे के समय सापेक्ष समय के बिंब–प्रति–बिंब मंथन की प्रयोगशाला में मन के अणु–परमाणु मनन की ऊर्जा से आवेशित भाव स्व भाव के अक्षांश–लंबांश हैं।

इन उभरते चमकते–दमकते बिंब–प्रति–बिंब के बिंब–प्रति–बिंब की झलक से अंतः करणीय–पीर की ज्यामिति को पारदर्शी – आँख से परखा – जाँचा – जाना – समझा जा सकता है।

'शब्द–शब्द मन' की सब की सब रचनाएँ प्रकाशित हैं। कई–कई तो कई–कई बार – बारंबार प्रकाशित हैं। कुछ–एक तो अंग्रेजी–राजस्थानी भाषा में भी अनूदित हूई हैं तथा प्रकाशन का अंश बनकर साहित्यिक – क्षितिज पर भी छाई हुई हैं। कुछ रचनाएँ पुरस्कृत भी हुई हैं।

अतः उर से आभार व्यक्त करता हूँ – उस संपादन – कला का भी – उन पत्र–पत्रिका का भी – उस संपादक–मंडल का भी; जिनकी कृपा ने इन सबका प्रकाशन किया तथा मुझे उपकृत किया।

उन सब पत्र–पत्रिका के नाम प्रकाशन के स्थान के नाम के साथ–साथ इस प्रकार हैं–

1. अमर उजाला, आगरा – बरेली।
2. नवभारत टाइम्स, नई दिल्ली।
3. वीर अर्जुन, नई दिल्ली।
4. अनुदीप, नरौरा।
22. पीपुल्स विक्टरी, दिल्ली।
23. क्रोनिकल, गाजियाबाद।
24. दैनिक जागरण, मेरठ।
25. ग्लोब एशिया, अलीगढ़।

5. विकासशील भारत, आगरा।
6. हिंदुस्तान, नई दिल्ली।
7. पीड़ित मानव, बुलंदशहर।
8. आइना टाइम्स, डिबाई।
9. वार्ष्णेय युवा, एटा।
10. राजपथ, अलीगढ़।
11. बरनदूत, बुलंदशहर।
12. मवाना की शाम, मवाना।
13. कबीर–पथ, दिल्ली।
14. मयराष्ट्र दैनिक, मेरठ।
15. जिंदा सवाल, अलीगढ़।
16. खबरयार, भोपाल–आगरा।
17. दैनिक हिंट, गाजियाबाद।
18. खुरजा टाइम्स, खुर्जा।
19. सम्मान, दिल्ली।
20. आज, आगरा।
21. शक्ति–पुंज, डिबाई।
26. कादंबिनी, नई दिल्ली।
27. कमल, लखनऊ।
28. रसमुग्धा, चिड़ावा।
29. कर्ण स्मारिका, करनाल।
30. प्रयास–15, कासिमपुर।
31. कविता श्री, अण्डाल।
32. साहित्य पारिजात, नई दिल्ली।
33. वार्ष्णेय दर्पण, नई दिल्ली।
34. झंकृति, धनबाद।
35. अतएव, लखनऊ।
36. बसंत, डिबाई।
37. पंखुड़ियाँ, गेवरा प्रोजेक्ट।
38. मानस–चंदन, सीतापुर।
39. समाज–प्रवाह, मुलुंड।
40. अणु विहार, नरौरा।
41. राष्ट्रभाषा संदेश, प्रयाग।
42. मन बौरा गया (संकलन), औरंगाबाद।

टंकण–मुद्रण से पृष्ठ–पृष्ठ पर प्रतिबिंबित विनायक प्रेस के स्वामी श्री मुकेश माहेश्वरी जी का सजग–हृदय स्वतः स्फुरण का स्फूर्त–भाव प्रदर्शन कृतज्ञता का उत्प्रेरण है । शब्द–शब्द – मन! की बधाई ।

सहयोग का सहयोग–सूक्ष्म का सूक्ष्म – पोषक–दीपक का पोषण एवं दीपण 'शब्द–शब्द मन' की त्वरा को त्वरित त्वरण–पथ पर गतिमान् कर गया ।

विधि–विज्ञ डॉ. सौरभ कुमार सिंह, मधु प्रकाशन; साहित्य मनीषी डॉ. शालीन कुमार सिंह तथा डॉ. कल्पना राजपूत के उपकार से भी उपकृत हूँ।

अनत्ता–तथाता ही मन–प्रणयन में अ से ह तक सहायक–संवाहक रहे हैं। अनंत नमन। 'ऊँ शांतिः शांतिः शांतिः'।

ज्ञानेंद्र माहेश्वरी

'साई–ओशो'
माहेश्वरी नगर, डिबाई–203393 (उ0प्र0), भारत
e-mail : maheshwarigyanendra21@gmail.com

रचना - क्रम

कितनी नावों में ----	21
हड़ताल	22
निर्गुण	22
पड़ौसिन	22
तालाब	23
नसीब	23
प्रोफेसर	23
दुर्घटना	24
योग्यता	24
विषखपरिया	25
प्रतीक्षा	26
गिरगिट	26
काँव! काँव!! ----	27
डॉक्टर	28
अध्यापक	28
विद्यार्थी	28
प्रायश्चित	28
यायावर	29
आशीर्वाद	29
आपात्–रस्म	30
सत्य कहहिं कबि नारि सुभाऊ	30
भाग्य	30
पिता	31
कुत्ता!	32
अंतः करण	33
ऐनक	35
संत्रास	35

लड़की	36
गहरे पानी पैठ	37
मैनेजर	38
अभी नहीं!	38
झलक	39
आँखें	39
मुखौटा	39
पंछी	40
अनुपमेय	40
सुहाग!	40
वियोग	41
शाश्वत	44
चल हंसा	45
अवमूल्यन	45
नियोग	46
मित्रता बड़ा अनमोल रतन	46
विलय	46
कचोट	47
तिरिया!	47
आवागमन	47
अंतर्–यात्रा	48
नियति	50
आँसू	50
हम क्या थे ?	51
पीड़ा	51
तुम!	51
हो सके तो	52
ऐसा होता आया है	52
संबोधि	53

सुख–दुख	53
प्रकाश	54
तरंग	55
सहज न चीन्हें कोइ	55
अस्तित्व	56
परिवर्तन	57
अनाम तुम!	58
काग	59
स्वभाव	59
जीवन	59
धर्म–पत्नी	60
परिवार	60
विडंबना	61
यह अचरज कासौं कहौं ?	61
ब्रह्म	61
सपेरे	62
कामना	62
पीर	63
अबधू	63
आपुहि आपु महँ	63
उद्‌बुद्ध	63
खोजनहार हैरान	63
कब तक ?	64
उपहास	64
क्या हो गए हम!	64

कितनी नावों में ---*

कितनी नावों में
कितनी बार
हमें भी दिखलाना
आँगन के पार द्वार !
फूलों का अनुमान
कहाँ है ?
यहाँ तो देखे हैं पतझार
जीवन के निर्माण –
सिंधु में
डोल रहीं लाखों पतवार
कितनी नावों में
कितनी बार !
मूल–चक्र के
सहस्रार से
जोड़े हमने सब बे–तार
सुप्तावस्था से –
तुरिया में
पहुँचे हैं हम इतनी बार
सोना पाया ––––
है अलख जगाया
छेड़ दिए अनहद के तार
नाभि – कुंड में
गोता खाकर
उतरे ब्रह्म–रंध्र के पार!
पीड़ा जागी
जब–जब उर में
लौटे अवनी पर बार–बार
कितनी नावों में
कितनी बार।

(* पुरस्कृत : उ0 प्र0 हिंदी संस्थान, लखनऊ; 9 अगस्त, 1999)

हड़ताल

कभी कोई
संगठन –
कभी कोई
हड़ताल करने वाले हैं
तो आओ हम!
हड़ताल न हो...
इसलिए –
हड़ताल करें।

निर्गुण *

अज्ञेय!
लेखन छोड़कर
सब–कुछ ज्ञेय!

पड़ौसिन

बीबी पड़ौसी की
कहलाती है –
पड़ौसिन
क्योंकि
उसमें होता है 'सिन'
इसलिए
वह हो जाती पापिन
और
जब चाहें तब
धारण कर
रौद्र–रुप
हो जाती डाकिन।

(* Translated : D.C.Chambial in English & Published in January 2000)

तालाब

एक मछली
गंदा करती है
सारा तालाब
तो मछली का
क्या है कसूर?
जब गंदा ही है –
सारा तालाब।

नसीब

वो हैं
बदनसीब
बाप के बेटे
यही क्या है कम
कोई नहीं गम
अच्छा ही हुआ
ना हुए गेटे
वरना्
ये भी खिताब
न होता नसीब।

प्रोफेसर

छात्रों की
राजनीति का थैसर
काम करे –
उत्प्रेरक का
होकर प्रेशर।

दुर्घटना

पड़ौसी की बीबी
ममता में
खो गई
अपने ही
आँचल में
धवंस बीज
बो गई।

योग्यता

आचरण से
गिरे हैं
बातों में नहीं
आ–(चरण) में
गिरे हैं
घातों में नहीं।

विषखपरिया

मानव!
तुम कौन हो मानव?
साँप भी नहीं
बिच्छू भी नहीं
तो फिर; तुम! कौन हो?
साँप के–
मुख में विष होता है
वह गुण तुममें नहीं
बिच्छू की–
पूँछ में विष होता है
उससे भी तुम अछूते रहे
आखिर –
फिर तुम्हारा !
क्या है परिचय?
मौन क्यों हो?
कुछ बोलो तो सही
क्या, 'मौन ही
भावना की भाषा है?'
मिल गया हल
अच्छा!
तो तुम!
विषखपरिया हो
और हो दानव।

प्रतीक्षा

उनके आने की
प्रतीक्षा करता हूँ
नहीं आते हैं
तो, 'न आने की'
प्रतीक्षा करता हूँ।

गिरगिट

धूर्त्तता का
लगाने से पुट
बनता है गुट
एक ही सिद्धांत है–
जब बदलते हैं–'गुट'
'वासांसि जीर्णानि
यथा विहाय...'
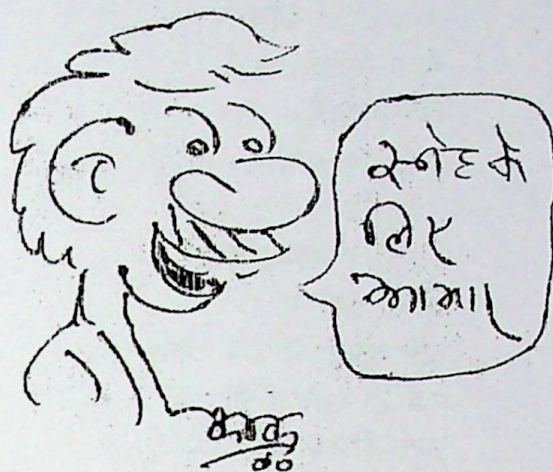
काँव! काँव!!---

दृष्टि
है–– 'काक'
आएदिन
पुष्टि
देते हैं––'काक'!
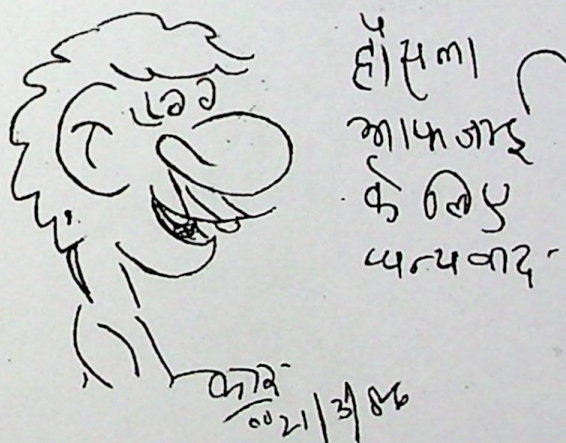
डॉक्टर

हैजा फैलने पर
चिल्लाते हैं–
टर्र–टर्र–टर्र–––

अध्यापक

छात्रों का
खून चूसते हैं –– जोंक बन
एक ही आदर्श है ––
'हरइ सिष्य धन –––'

विद्यार्थी

विद्यार्थी
जो–– निकाल दे
विद्या की अर्थी।

प्रायश्चित

छात्र
शिक्षकों को
पीट रहे हैं
शिक्षक
उपदेश दे रहे हैं...
'बुभुक्षितः किं न करोति...'

यायावर

कहाँ जाऊँ ?
जा नहीं सकता (?)
'कहाँ जाई का करीं ?'
तो–– मर जाऊँ
मर नहीं सकता (??)
'मेरे मन आनंद'
दुख पाऊँ
सह नहीं सकता (???)
'सहन में ही त्राण'
सुख पाऊँ
पा नहीं सकता (????)
'बिरह भुवंगम तन बसै'
तो फिर जीऊँ
जी भी नहीं सकता –– (क्यों ?)
जी नहीं करता –––
'जिवै तो बौरा होइ'।

आशीर्वाद

भ्रष्टता
इस सीमा तक
बढ़ गई है
उदघाटन कर
आशीर्वाद भी
देने लगी है।

आपात्-रस्म

आवाज को
दबाया जा रहा है
अनुशासन–पर्व!
मनाया जा रहा है।

सत्य कहहिं कबि नारि सुभाऊ

उन्मुक्त नारी
'जिमि सुतंत्र भए
बिगरहि नारी'
गुनगुनाकर
अमल में लाने का
कर रही थी बिचारी
प्रयास नारी।

भाग्य *

कविता सुना रहा था
दर्द भरी
आवाज सुनाई दी
चौंका, भड़का, गुस्सा आया
संतुलन बिगड़ गया
विवेक खो गया ।
बेसहारा है
दर–दर का मारा है
न किसी का दुलारा है
न प्यारा है --- (क्यों ?)
दर्द का मारा है
'भाग्यं फलति सर्वत्र ...'

(* पुरस्कृत : अमर उजाला, आगरा–बरेली; 4 अप्रैल, 1982)

पिता

बच्चे
बिगड़ रहे हैं
दोष --
शिक्षक पर
मढ़ रहे हैं।
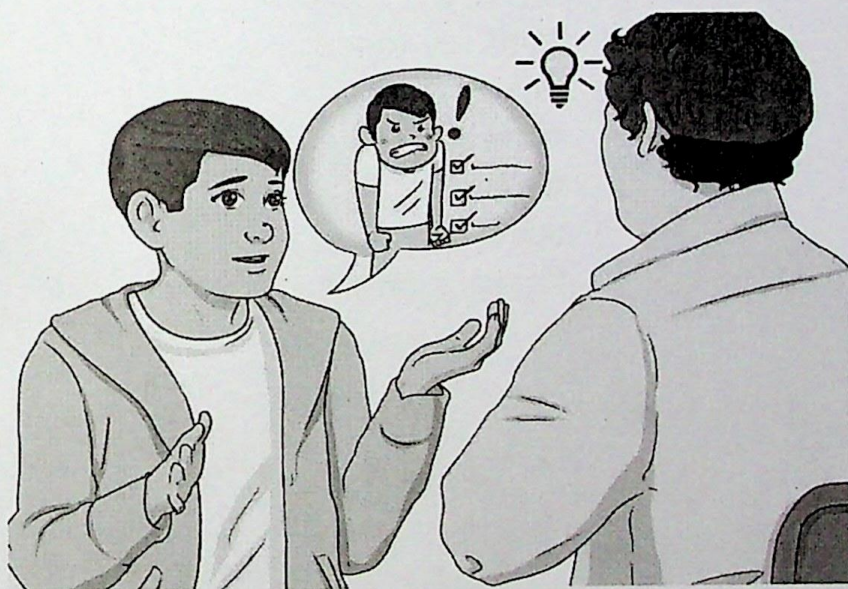
कुत्ता !

कुत्ता !
तुम! बड़े असभ्य हो
समाज में रहते हो
फिर भी भौंकते हो
कोई बात नहीं
भौंकना---
जन्मजात स्वभाव है
जीवन गुजर गया ---
गुजरता आया है ---
गुजरता जाएगा ---
फिर भी, तुम! जड़ हो
तुम्हारा! दोष नहीं
मन–दर्पण मैला है
जन्म–जन्मांतर के
पापों की गठरी
सर पर है
(तुम्हें! उसे ढोना है
निश्चित समझो !
भोगना है ...
भोगना प्रारब्ध है)
क्योंकि, वह तुम्हें
विरासत में मिली है।

अंतः करण

भटकी हुई रंभा
सृष्टि – सृष्टा ––
जगत्–ईश–तनया
मधुमुखी
शची–सहचरी
सती सुंदरी
आदम–ईव–वंशजा
को–
सुहृदवर––
तथाकथित नारद
मँडराते हैं ––
निशि–दिन
पाने को ––
पल्लवित–पुहुप
तथा ––
फीकी मरकरी
छवि की
इंदु – ज्योत्स्ना
और
घूमते रहते हैं
लगाने को ––
'नवनीत'
कि, किसी तरह
प्रणय–प्रस्ताव आ जाय
मन भी थाह पा जाय।
सत्य कहउँ लिखि ––––
जगी हुई है ––
नारद–उर में

वासना नंगी ––
कामना वितंडी ––
मन का उद्दंडी ––
तन का रंगी ––
झाँक रहा है
भूतल पर
भटकी हुई ––
स्वर्ग–अप्सरा
के ––
उर में
कि किसी तरह ...

ऐनक

दृष्टि क्षीण के
नयन–समर्थक
हो गए तुम!
पथ–प्रदर्शक।

संत्रास

कितनी बार
आए और गए
आते रहेंगे, जाते रहेंगे
'ऐसेहि जनम–समूह सिराने'।
किंतु, अब की बार
पुण्य–जन्म–सुफल से
मिली है ––
सुर–दुर्लभ मानव–देह
जगी है ––
अवर्ण्य, अकथ्य,
अतृप्त प्यास;
एक ऐसी प्यास ––
जिसके बुझने पर
'बाकी रहे न थाक'।
यात्रा लंबी है, उमर छोटी है
फिर भी करनी है –––
चाहें जीवन में
कितना भी हो ––
संत्रास ।

लड़की

लड़कियाँ
लड़कों की 'वेशभूषा'
पहनकर ––
सज–धजकर
सड़कों पर
ऊधम मचाती हैं
'बैलबॉटम' में लड़का––
ब्लाउज् में –– 'माँ'
बनकर
दिखाती हैं
पुनश्च,
अँधेरे से खेलती हैं
लज्जा को छोड़ती हैं
हम उम्र शरीरी, लड़कों के
काठ से सटकर
चलती हैं
गर्व करती हैं ––
लड़कियाँ –––!
कुछ क्षणों को
लड़का हो जाती हैं
सीटियाँ बजाती हैं ––
'जोबन लाग हिलौरें लेई'।

गहरे पानी पैठ

पूरी रात गुजर गई
भारत की माटी बोली ––
यह सुनकर
पैरों के नीचे की
जमीन खिसक गई
रहा न गया
फिर भी रह गए
अंतः करण बोला ––
हौले से ही बोला !
'रही किनारे बैठ'।
पुनश्च, बुदबुदाया
इसी प्रकार न जाने
कितनी रातें गुजर गईं
कितने जन्म गुजर गए
किंतु, 'तत्व' की पहचान
नहीं हो सकी
नहीं .. हो .. सकी
क्योंकि, करे कौन ??
डूबे कौन, जले कौन, तपे कौन ;
स्वानुभूति कौन करे ––
आईना कौन देखे
'ध्यान' पर ध्यान कौन दे
उपलब्ध होता है जब –– 'ध्यान'
देख पाता है –– 'आत्म–स्वरुप'
पाता है फिर ––
मुक्ति .. मोक्ष .. कैवल्य
तभी तो कबीर ने कहा है ––
'जिन खोजा तिन पाइयाँ'।

मैनेजर

मैनेजर
होता है – 'ज्वर'
संस्था के लिए
करता है –– मैनेज
अपने ज्वर को
हो जाता है –– 'मेन् ज्वर'
संस्था के लिए –––

अभी नहीं !

आने – जाने की प्रक्रिया में
आने – जाने का प्रक्रम
तोड़ दिया ऐसे
तुड़वा लिया कैसे ?
तुड़वा दिया जैसे
ऐसे ; जैसे –– कभी
गए ही न थे
कभी –– जाएँगे ही न क्या (???)
जाएँगे अवश्य
जाते अब भी हैं
जाते जब भी थे
दृष्टिकूट है; झिल्ली है।
पहले सशरीर जाते थे
अब अशरीर जाते हैं;
शरीर से भी जाएँगे
अवश्य जाएँगे
जाना शाश्वत है।

झलक *

घोर !
अंधकार है
फिर भी ––
प्रकाश है;
न जाने,
क्या बात है ?
खुला ..
आकाश है ।

आँखें

'आँखें' –– आँखों देखीं
आँखें थीं
आँखें–न–देख पाईं आँखें
थीं; न थीं
बराबर थीं।

मुखौटा

आज भी –– "मुखौटा"
आदमी से
उतना ही बड़ा है
जितना कि ––
मुखौटा से आदमी
और ––
आदमी से –– "मुखौटा"।

(* पुरस्कृत : कादंबिनी, दिल्ली; 1 जुलाई, 1997)

पंछी

पंछी उड़ गया
काँप रहे हैं ––
थिर–हो जाएँगे
काल–प्रवाह में ।

अनुपमेय

तुम पर
विश्वास है
उन पर नहीं
विश्वास पर
विश्वास है
तुम पर नहीं ।

सुहाग !

पारिवारिक चित्त की
चिंता मिटा रही हूँ
अपने चित्त को ––
जलाए जा रही हूँ
रोज पढ़ाने जा रही हूँ
सच बताऊँ !
'सुहाग' खरीदने के लिए
पैसे जुटा रही हूँ।

वियोग

दर्शन का सुख पा गए
दुख के बादल छा गए

हृदय प्रसन्न था
रोम–रोम प्रफुल्ल था
अप्रत्याशित रुप से––
क्षण का मिलन था

दीर्घावधि थी
उसमें भी घाव था
इसीलिए पीर थी
बिछुड़न का आव था

समय–प्रच्छन्न था
सूक्ष्म संयोग था
लिए वियोग था

दृष्टियाँ दूर थीं
दूरियाँ अपूर थीं
फिर भी झलक पा गए
मन को लुभा गए
और तड़फा गए

कैसा वियोग है
क्या कुछ योग है

प्रगति उत्तरोत्तर है
लेकिन प्रश्नोत्तर है
उत्तर भी प्रश्न हैं
'दर्शन' में व्यस्त हैं
निजी बोध अस्त है

भीड़ है दर्शन की
छवि देखूँगा----
प्रत्याशित मिलन की

सारी–गाथा बिछुड़न की
जीवन के अब तक की
लिख दूँ कैसे ?
अप्रत्याशित ----
अंतराल में बिछुड़न की

चूँकि छटपटाहट है --
मछली कू जैसे
जल के जीवन की

मिलन पटाक्षेप था
भ्रमित आक्षेप था
मन के ऊहापोह का

कुछ नहीं लिखूँगा
वहीं बुला लो
अब तक के जीवन की
अंतराल के बिछुड़न की
कुछ–कुछ अबिछुड़न की
आजीवन कहूँगा
मूक रहूँगा

वियोगी मिलन होगा
भाव–सिंधु तरल होगा
उस पर बैठ जाएँगे
हम भी तर जाएँगे

किंतु, मिलन की वेला
कब आएगी ?
संध्या होने वाली है
ज्योति बुझ जाएगी

इसलिए, तुम्हीं
इस अंतराल की
बिछुड़ी घड़ी की
सुई घुमा दो
तरंगें भेज दो
वो लिख जाएँगी
सारी कह जाएँगी ———
बिछुड़न नहीं थी
मिलन का वियोग था
जिसमें संयोग था
फिर भी वि —— यो —— ग है
वियोग है —— योग है —— वियोग है ।

शाश्वत

कितने भी लगें बंध
'औ' –– प्रतिबंध !
चाहें अनुबंध
चिड़िया तो मुक्त है
रही है, रहेगी –––
चिरकाल तक ;
किसी दिन उड़ जाएगी
देह रह जाएगी –––
तो ! अभी उड़ चल
चल, उड़ चल
री ! चिड़िया
ये घर हुआ बेगाना ।

चल हंसा

मन नहीं लगता
तो करो मन !
चलने की तैयारी ;
इक–न–इक दिन जाएँगे
जाना चाहते हैं
अभ्यास कर रहे हैं ––
जाने का;
ताकि, जा सकें –– 'और'
तोड़ सकें
आने का क्रम
ओ, विराट् !
'बंद न करना द्वार'
आ रहे हैं
अभी आएँगे
देर नहीं है
करो मन –––

अवमूल्यन

विवाह तो प्रेम हुआ
'प्रेम–विवाह' हुआ
विवाह, प्रेम था
या, 'प्रेम' –– विवाह था
प्रेम –– प्रेम था
या, 'विवाह' –– प्रेम था।

नियोग

आधुनिक झुनिया ने
ब्राह्मण – वंश में
वंश – परंपरा को
सुरक्षित किया
एक नहीं ;
पाँच को जन्म दिया।

मित्रता बड़ा अनमोल रतन

शत्रुता का –– 'इत्र'
फुरेर
सजे बैठे हैं –– मित्र
यह कैसा ?
संयोग विचित्र ।

विलय

मन मलीन
तन कुलीन
मानवता !
हो गई विलीन।

कचोट

खाओ–पिओ
पढ़ो–लिखो
कमाओ–धमाओ
और, फिर;
मर जाओ ––
यही है जिंदगी।

तिरिया !

और !
में
रत ––
औरत।

आवागमन

आते नहीं, जाते हैं;
जाते नहीं, आते हैं;
आते हैं, जाते हैं;
जाते हैं, आते हैं;
आना–जाना
रुका नहीं है
जाना–आना
रुक जाएगा
आना–जाना
जाकर, आकर;
आकर, जाकर
कभी न आकर ;
थम जाएगा
आना–जाना।

अंतर्-यात्रा

चलता हूँ
चलकर भी
चल नहीं पाता
मंजिल, पहुँच नहीं पाता
'दिल्ली बहुत दूर है'——
कुछ नहीं कहता
फिर भी ——
मौन नहीं रहता
'मूक होइ बाचाल' ——
कहता हूँ
कहकर भी
कह नहीं पाता
'कथा अगम्य' है——
सुनता हूँ
सुनकर भी
सुन नहीं पाता
'अजपा हो नहीं पाता' ——
झूठ को
झूठ कह नहीं पाता
झूठकर भी
झूठ को
झुठला नहीं पाता
'झूठइ लेना झूठइ देना
झूठइ भोजन झूठ चबेना'——
सच को भी
कड़वाहट में
कह नहीं पाता
मीठा बोल नहीं पाता
'सत्यमेव जयते ——'——

पाता हूँ
पाकर भी
पा नहीं पाता
पाने से ——
पाया नहीं जाता
'गहरे पानी पैठ'——
फिर भी हम !
वही हैं, जो थे
वही नहीं हैं, जो थे
वही रहेंगे, जो हैं ....
'असतो मा सद्गमय !
तमसो मा ज्योतिर्गमय !
मृत्योर्मा अमृतंगमय !'

नियति

घुटते–घुटते
घुट गया हूँ
मर नहीं पाया
'मेरे मन आनंद' ––
मरते – मरते
बच गया हूँ
जी नहीं पाया
'जिवै तो बौरा होइ' ––
कहानी ! ऊब की
क्या कहूँ तुमसे
अरे ! जीते – जीते
थक गया हूँ
सो नहीं पाया
'का सोबै दिन रैन'।

आँसू

जब याद तुम्हारी
आती है
आँखों से आँसू
गिरते हैं
गिर–गिर कर
रुकते जाते हैं
रुक–रुक कर
गिरते जाते हैं
थमने का नाम
नहीं लेते
जब याद!
तुम्हारी आती है।

हम क्या थे ?

हेरा – फेरी
हमारा ––
धरम हो गया ;
हर घड़ी
धोखा देना ––
करम हो गया।

पीड़ा

दर्द के जाले
आदमी के हो गए ––
आदमी तो आदमी
'देवता' भी रो गए।

तुम !

क्या करें
तुम्हारे लिए
जियो–न–जियो
हमारे लिए।

हो सके तो

दो न दो ––
तुम! साथ मेरा
पर न मेरी
राह रोको;
हो सके तो ––
आदमी से
करके आँखें ...
चार देखो।

ऐसा होता आया है

घर की ही
दीवार के
गारे में हम भी ––
चिन दिए;
गैरों की तो
क्या कहें हम!
अपनों ने ही ––
चिन दिए।

संबोधि *

शिखर पर
खड़ा हूँ
शिखर हो गया हूँ
गिर न जाऊँ
बिखर गया हूँ
खण्ड होते–होते
अखण्ड हो गया हूँ
शिखर पर ———

सुख-दुख

सुख होता है/दुख होता है
सुखी/दुखी होता है
सुख चंचल है/
ज्यादा देर नहीं ठहरता
उसमें ठहराव नहीं
दुख भी बारहमास नहीं रहता
जितनी देर भी ठहरता है
दुखी कर देता है
सुख! दुखमय बन जाता है;
दुखमय बन दुख ही
अभिव्यक्ति पाता है।

(* पुरस्कृत : कादंबिनी, दिल्ली; 1 जुलाई, 1997)

प्रकाश

प्रकाश की अनुपस्थिति का होना
अंधकार का होना है,
प्रकाश का होना
अंधकार का खोना है
अंधकार कुछ भी नहीं
प्रकाश का उपस्थित न होना है
घना अंधकार होता है –– तो
प्रकाश की संभावना होती है
प्रकाश की एक किरण के
उदय होते ही
अंधकार स्वतः ही
विदा हो जाता है, खो जाता है
अंधकार कहीं नहीं जाता
वहीं का वहीं रहता है
प्रकाश की किरण के आते ही
विलीन हो जाता है
अंधकार का होना
प्रकाश का न होना ही है,
प्रकाश का होना
अंधकार का खोना है
उसका न होना है
अंधकार होता है –– तो
कुलबुलाता है
कुछ पाने के लिए ––
तड़फड़ाता है
कुलबुलाहट ही ––
अभिव्यक्ति पाती है .....
कविताएँ जनमाती है।

तरंग

इधर–उधर / तितर–बितर
घूमते–फिरते / करवटें बदलते अनुभव
मन की पकड़ में आकर
उपस्थित होते हैं –– तो
शब्द – शब्द .....
अभिव्यक्ति पाते हैं
'शब्द – शब्द मन' हो जाते हैं।

सहज न चीन्हें कोइ

खेलों में
तुक ही होती है
तुक न हो, तो
खेल नहीं
खेल का मजा नहीं
इसीलिए –– ऐसे खेल
खेले जाते हैं, होते हैं
ऐसे खेल ––
'सहज न चीन्हें कोइ' हैं।

अस्तित्व

व्यक्ति हो
व्यक्ति का व्यक्तित्व न हो
कोई व्यक्ति ही न हो
व्यक्ति का––
अस्तित्व ही नहीं झलकता
व्यक्ति का व्यक्तित्व होता है
अस्तित्व झलकता है,
व्यक्तित्व –––
अभिव्यक्त होता है;
व्यक्तित्व और अस्तित्व का
अभिव्यक्त होना ही ––
व्यक्ति का व्यक्ति होना है।
विराट् अस्तित्व मचलता है
व्यक्तित्व में उतरता है
व्यक्ति का व्यक्तित्व
'अस्तित्व' पाकर ––
झलकता है .....
'व्यक्तित्व' –– अस्तित्व में
समा जाता है
व्यक्तित्व, अस्तित्व हो जाता है;
व्यक्ति का व्यक्ति
व्यक्त होकर
व्यक्तित्व हो जाता है
अस्तित्व –– व्यक्तित्व हो जाता है
व्यक्ति व्यक्तित्व हो जाता है
और तब ––
व्यक्तित्व 'अस्तित्व' हो जाता है।

परिवर्तन

परिवर्तन ही जीवन है
परिवर्तन प्राकृतिक प्रक्रिया है
परिवर्तित होना ––
प्रकृति का स्वभाव है
परिवर्तन प्रकृति का शाश्वत सत्य है
हर क्षण नये से नये
साँचे में ढल रहा है
हर पल नई आभा
के साथ उग रहा है
रोज कुछ ना कुछ
नया हो रहा है/होता जा रहा है
प्रकृति में बदलाव है/ठहराव नहीं
परिवर्तन होते ही रहते हैं
परिवर्तन को जिया नहीं जाता
परिवर्तन को जीकर ही
परिवर्तन को सार्थक
किया जा सकता है, पर ––
परिवर्तन का पकड़ना
आसान नहीं
पकड़ में आ जाए, तो
परिवर्तन को ––
जिया भी जा सकता है
रवि जहाँ पहुँच नहीं पाता
कवि वहाँ पहुँच जाता है
कवि ही परिवर्तन को
जी पाता है, जी सकता है;
जीकर ही परिवर्तन को
सार्थक कर सकता है।

अनाम तुम ! *

कौन आता है
कौन आया है
कौन आएगा
फिर भी कोई न कोई
आता ही है, जो
उस विराट् की ––
खबर लाता है ....
फूलों का खिलना
पत्तों का झरना;
हवा का चलना
दिल का धड़कना;
सूरज का निकलना
चाँदनी का बरसना;
सभी उसी अस्तित्व का
संदेसा लेकर आते हैं, जो
सभी में समाया है, किंतु उसका
कोई नाम नहीं
फिर भी वह आता तो है ही
चाहे अनाम ही सही
जिसका कोई नाम नहीं
उसको पुकारने के लिए ही सही
कहना तो पड़ता ही है ––
अनाम तुम!

(* अनूदित : राजस्थानी एवं प्रकाशित – दिसंबर 2000)

काग

साथ
दो या न दो
क्या फर्क पड़ता है
देने न देने से
हमारा ––
क्या बिगड़ता है ?

स्वभाव

कुत्ते को
जहाँ से
चाटना मिला है
आदमी को
वहाँ से
काटना मिला है।

जीवन

घुटन के
कुहासे में
उजास बो दो
उतर जाएँ
'नदिया के पार'।

धर्म-पत्नी

'पत्नी' धर्म होती है
या–'धर्म' पत्नी होता है
धर्म, धर्म होता है
या 'पत्नी' धर्म होता है
धर्म, धर्म है ––– और
पत्नी, पत्नी है
न 'धर्म' पत्नी होता है
न 'पत्नी' धर्म होती है
जब तक धर्म है
'पत्नी' धर्म नहीं हो सकती
जब तक पत्नी है
'धर्म' पत्नी नहीं हो सकता
इसीलिए/'धर्म', धर्म है/और/
'पत्नी', पत्नी है
न 'धर्म' पत्नी है और
न ही 'पत्नी' धर्म है।

परिवार

अगल–बगल
अड़ौस–पड़ौस
सब जगह
संबंधों को
बिगाड़ रहे हैं
घर को
21 वीं सदी में
ले जा रहे हैं।

विडंबना

सहारों ने
कब सहारा दिया
सहारों ने
बेसहारा किया
बेसहारे रहे ––
सहारे तले
बेसहारों ने ही
बेसहारा किया।

यह अचरज कासौं कहौं ?

डाकखाना कहाँ है ?
शहर में ––
शहर कहाँ है ?
डाकखाने में ––
और दोनों ;
एक दूसरे में।

ब्रह्म *

भावनाएँ –– मौन
कामनाएँ –– मौन
कहै कौन ??
साधनाएँ –– मौन।

(* पुरस्कृत : कादंबिनी, दिल्ली; 23 फरवरी, 1998)

सपेरे

आदमी!
घनेरे हैं ––
अनावृत
सपेरे हैं।

कामना *

मेरी श्रद्धा
के दीये को
तुम! घृत देना
दीया तले भी
रहे उजेरा;
ऐसा तुम!
वरदान भी देना।
बाती रहै अघट्ट
दीया भी बलै अगम का .....
वैसा तुम!!
अवदान भी देना।
बिन बाती बिन तेल बलै भी
दीपक बारा नाम रहै भी
ऐसा तुम!!!
अवधान भी देना।
ज्योति ही से ज्योति जलै
निरगुन में बिसराम रहै
ऐसा ही .....
अनुदान भी देना।

(* कृते वंदना : कवि उवाच)
(* प्रसारित : दूरदर्शन–एन डी 1 – 6 एवं 14 दिसंबर, 2014)

पीर

टीस
फाँस की
चीख!
साँस की।

अबधू *

मर जाता है -- कोई !
पाता है --- 'अमृत' ?
जो मरता है -- सोई।

आपुहि आपु महँ **

तुझमें
'मैं' --
मुझमें
'तू'।

उद्बुद्ध ***

उपलब्ध
भगवत्ता
अनुभूत
अनत्ता।

खोजनहार हैरान **

आप
सभी में
सभी ---
आप में।

(* पुरस्कृत : कादंबिनी, दिल्ली; 23 फरवरी, 1998)
(** Translated : D.C.Chambial in English & Published in January 2000)
(*** Translated : Dr. V.K.Singh in English)

कब तक ?

अपमान का घूँट
क्यों पिया जाय;
विषाक्त जीवन
क्यों जिया जाय ?

उपहास

उनकी बातें
वक्त की मारी
विधवा से ––
शृंगार के
करने की
कहने .....
जैसी हैं।

क्या हो गए हम !

वक्त के
दर्पण में
जब–जब
मुकद्दर
देखता हूँ
तो एक ––
भुतहा तस्वीर
उभरती है।
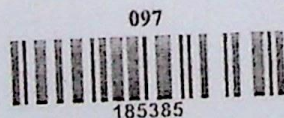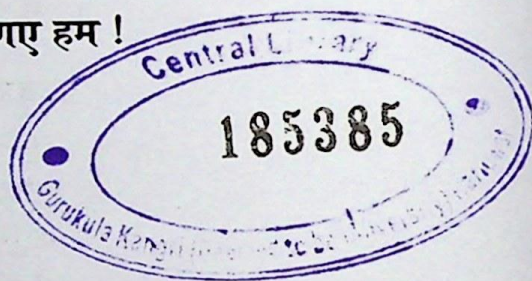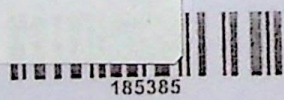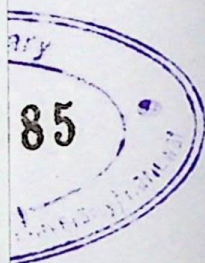
परिचय

मैं कवि हूँ; नहीं! नहीं! नहीं! --- ∞
कवि होने के प्रयास में जुटा हूँ,
कवि नहीं हूँ; शब्दस्थ हूँ ।
कवि होना आसान नहीं,
गुड्डे-गुड़ियों का खेल नहीं;
इस शरीर का काम नहीं।
बिखरा व्यक्तित्व साध लिया;
शब्द-शब्द बाँध दिया ।
सत्य! अपना लिया;
झूठ!! झुठला दिया ।
पर, मैं कवि नहीं हूँ;
इसीलिए कह सकता हूँ--
'कबित बिबेक एक नहिं मोरें---'

(कृते कविता : कवि उवाच)